



## बारिश और पुनरावृत्ति

**जलद्वारों की उपेक्षा से हुए नुकसान के लिए अत्यधिक बारिश कोई बहाना नहीं है**

इस मौसम में आंध्र प्रदेश और तेलंगाना में भारी बारिश और बाढ़ ने रेखांकित किया कि कैसे चरम मौसम शासन के साथ बातचीत करता है। 2024 में, आंध्र प्रदेश ने दो दिनों में अपनी वार्षिक वर्षा का 27% रिकॉर्ड किया; इस अगस्त में, विजयनगरम में 46% अधिक वर्षा दर्ज की गई, कुछ हिस्सों में 90% तक की रिपोर्ट की गई। लगातार वर्षा से अत्यधिक वर्षा मानसून के व्यवहार में बदलाव का संकेत देती है। नदी घाटियों में जलाशय और बैराज प्रणालियों को मौसमी प्रवाह का प्रबंधन करने के लिए डिज़ाइन किया गया है, लेकिन हाल की बारिश की घटनाओं का समय और तीव्रता मायने रखती है। इस वर्ष एक समय पर, श्रीशैलम 94% भरा हुआ था और नागार्जुन सागर 96%, अतिरिक्त प्रवाह के लिए बहुत कम जगह छोड़ रहा था। संकेत वास्तव में अतिरिक्त वर्षा और छोटे फटकों में इसकी एकाग्रता है जब जलाशय पहले से ही लगभग भरे हुए हैं यह पुनरावृत्ति इस ओर इशारा करती है कि कैसे छोटी सहायक नदियाँ और जल निकासी चैनल, जिन्हें अक्सर नीतिगत रूप से नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है, दुर्बल करने वाले अवरोध बिंदु बन जाते हैं। जहाँ बाढ़ का विशाल आकार बाढ़ के एक हिस्से की व्याख्या करता है, वहीं बुनियादी ढाँचे की कमजोरियाँ नुकसान को बढ़ा देती हैं। प्रकाशम बैराज में, पिछले साल क्षतिग्रस्त हुआ एक गेट इस मौसम में भी मरम्मत के बिना पड़ा रहा, जिससे पानी की निर्बाध निकासी बाधित हुई। गोदावरी के किनारे, भद्राचलम के पास बाढ़ के तट कई जगहों पर डूब गए या ढह गए, जिससे सीमा के दोनों ओर के निवासियों में चिंता बढ़ गई। शहरी क्षेत्रों में, आंशिक रूप से गाद से मुक्त नालों, अतिक्रमित वर्षा जल चैनलों और कंक्रीट की सतहों ने जल अवशोषण को सीमित कर दिया है। कुल मिलाकर, बुनियादी ढाँचा मौजूद है, लेकिन उसका रखरखाव या तत्काल उन्नयन नहीं किया जाता है।

दोनों राज्यों में आपदा प्रबंधन तंत्र परिपक्व है और उसने कई लोगों की जान बचाई है। फिर भी, जोखिम कम करने में संस्थाएँ उतनी चुस्त नहीं हैं। साल दर साल, तत्काल राहत के लिए बड़ी रकम मंज़ूर की जाती है (तेलंगाना ने हाल ही में अल्प सूचना पर प्रति ज़िला ₹1 करोड़ जारी किए हैं) लेकिन बाढ़ के तटों को मज़बूत करने और डायवर्जन चैनलों को पूरा करने का काम अधूरा ही रह गया है। 2024 और 2025 में, अगस्त के अंत और सितंबर की शुरुआत में अत्यधिक वर्षा हुई। दोनों बार, कृष्णा और गोदावरी प्रणालियाँ बुरी तरह प्रभावित हुईं और विजयवाड़ा जलमग्न हो गया। दोनों ही बार, बुदमेरु के अधूरे कार्यों और राहत निधि के अस्पष्ट उपयोग को उजागर करते हुए विरोध प्रदर्शन हुए। अत्यधिक वर्षा को रोका नहीं जा सकता, लेकिन इसका पूर्वानुमान लगाकर इसके परिणामों को कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, जलाशय प्रबंधन में वास्तविक समय के जल विज्ञान मॉडलिंग को शामिल करने की आवश्यकता है ताकि जल स्तर को बाढ़ से पहले कम किया जा सके और बाढ़ सुरक्षा कवच बनाया जा सके। शहरी नियोजन को जल निकासी नेटवर्क को प्राथमिकता देनी चाहिए और जल अवशोषण के लिए पारगम्य भूमि आरक्षित करनी चाहिए, केवल दिखावटी गाद हटाने के अभियानों से आगे बढ़कर। बाढ़ तटों और जलद्वारों को निरंतर, न कि आकस्मिक, रखरखाव की आवश्यकता होती है, और उनके रखरखाव को राजनीतिक चक्रों से अलग रखा जाना चाहिए। कोई भी राज्य यह तर्क देने में गलत नहीं है कि असाधारण बारिश मजबूत प्रणालियों को भी प्रभावित कर सकती है, लेकिन अगर वे इसे सुधार से बचने के बहाने के रूप में इस्तेमाल करते हैं, तो दोनों ही भाग्यवाद का जोखिम उठाते हैं।

संवैधानिक लोकतंत्र न केवल लिखित कानूनों से, बल्कि दक्षिण अफ्रीकी विधिशास्त्र के प्रोफ़ेसर, एटियेन मुरेनिक द्वारा सर्वप्रथम वर्णित "औचित्य की संस्कृति" से भी टिका रहता है। अर्थात्, यह विचार कि सार्वजनिक शक्ति के प्रत्येक प्रयोग की व्याख्या और बचाव किया जाना चाहिए। जैसा कि मुरेनिक ने कहा, "सरकार द्वारा दिया गया नेतृत्व उसके निर्णयों के बचाव में प्रस्तुत किए गए मामले की तार्किकता पर आधारित होता है, न कि उसके अधीन बल द्वारा प्रेरित भय पर।"

भारत में न्यायाधीश राज्य से जवाबदेही की माँग करने के लिए नियमित रूप से इस सिद्धांत का सहारा लेते रहे हैं। लेकिन कॉलेजियम द्वारा न्यायमूर्ति विपुल एम. पंचोली को न्यायालय में पदोन्नत करने की सिफ़ारिश पर भारत के सर्वोच्च न्यायालय की न्यायमूर्ति बी.वी. नागरत्ना द्वारा असहमति व्यक्त करने की मीडिया में आ रही खबरों से ऐसा प्रतीत होता है कि औचित्य की यह संस्कृति कॉलेजियम के द्वार पर ही समाप्त हो जाती है। जब न्यायालय द्वारा अपने सदस्यों का चयन करने की बात आती है, तो जनता को जानने का कोई अधिकार नहीं है।

#### व्यवस्था पर दोषारोपण

इस तरह की असहमति आमतौर पर एक निर्णायक क्षण का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन कॉलेजियम और उसकी लगभग पूर्ण अस्पष्टता ने यह साबित कर दिया है कि विरोध एक विफलता से ज़्यादा एक निरर्थक प्रयास साबित हुआ है। न्यायालय की वेबसाइट पर अपलोड किया गया प्रस्ताव, जिसमें सिफ़ारिश दिखाई गई है, सर्वसम्मति का संकेत देता है। इसमें असहमति का कोई ज़िक्र नहीं है। हमें न्यायमूर्ति नागरत्ना की आपत्ति के बारे में मीडिया में आई खबरों से ही पता चला। उन्होंने जो नोट लिखा था, वह छिपा हुआ है, लेकिन हमें बताया गया है कि उनकी आपत्तियाँ "गंभीर" थीं। यह स्पष्ट नहीं है कि असहमति केंद्र सरकार के साथ साझा की गई थी या नहीं, जिसने सिफ़ारिश के 48 घंटों के भीतर ही नियुक्ति की सूचना जारी कर दी।

जो हम जानते हैं और जो हमें जानने की अनुमति है, उसके बीच यह अंतर, उस व्यवस्था में निहित खामियों को दर्शाता है जिसके तहत हम अपने न्यायालयों में सदस्यों की नियुक्ति करते हैं। भारत के सबसे वरिष्ठ न्यायाधीशों में से एक ने शायद यह माना होगा कि उम्मीदवार की पदोन्नति न होने के ठोस कारण थे, फिर भी उनके तर्क और बहुमत की प्रतिक्रिया, दोनों ही अज्ञात हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि असहमति केवल एक नियुक्ति से संबंधित हो सकती है। यह संभव है कि कॉलेजियम के अन्य सदस्यों के पास प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए भारी कारण रहे हों। लेकिन यह तथ्य कि जनता को कुछ भी नहीं बताया जाता, अपने आप में इस व्यवस्था पर एक दोषारोपण है - इसकी पारदर्शिता का अभाव, इसकी लोकतांत्रिक कमी, और जिसके नाम पर यह कार्य करता है, उनके सामने अपनी बात रखने से इनकार।

कॉलेजियम शुरू से ही पारदर्शिता का विरोधी रहा है। यह न्यायाधीशों द्वारा निर्मित कानून का परिणाम है। "द्वितीय न्यायाधीश मामले" (1993) में निर्मित और "तृतीय न्यायाधीश मामले" (1998) में स्थापित, यह व्यवस्था उच्च न्यायपालिका के सदस्यों की नियुक्ति हेतु सर्वोच्च न्यायालय के पाँच वरिष्ठतम न्यायाधीशों को प्रधानता प्रदान करती है।

18 अगस्त को राज्यसभा में भारतीय बंदरगाह विधेयक, 2025 का पारित होना भारत के समुद्री विधायी इतिहास में एक महत्वपूर्ण क्षण है। 1908 के अधिनियम को निरस्त करने और प्रतिस्थापित करने के उद्देश्य से, यह विधेयक नव-अधिनियमित तटीय नौवहन अधिनियम, 2025, समुद्री माल परिवहन विधेयक, 2025 और व्यापारिक नौवहन अधिनियम, 2025 के साथ आता है। यह एक ऐसा विधायी पैकेज है जिसे सरकार समुद्री शासन को सुव्यवस्थित करने और भारत के नौवहन नियमन को वैश्विक प्रथाओं के अनुरूप लाने के लिए महत्वपूर्ण मानती है।

#### प्रगति, लेकिन कुछ कमियाँ भी

पहली नज़र में, ये नए कानून भारत के समुद्री शासन को आधुनिक बनाने के एक व्यापक प्रयास का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारत का समुद्री नियमन खंडित और पुराना है, आधुनिक नौवहन वित्त, अपतटीय संचालन और अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों ने लंबे समय से मौजूद कानूनी और परिचालन ढाँचों को पीछे छोड़ दिया है। भारत के लिए अपने व्यापार का विस्तार करने, विदेशी निवेश आकर्षित करने और अपनी समुद्री स्थिति को बेहतर बनाने के लिए, वैश्विक सर्वोत्तम प्रथाओं के साथ तालमेल बिठाना वास्तव में आवश्यक है। विशेष रूप से, भारतीय बंदरगाह अधिनियम को एक सुविधाजनक कानून के रूप में सराहा गया है - जो व्यापार को आसान बनाता है, सतत बंदरगाह विकास को बढ़ावा देता है, और भारत के अन्यथा असंबद्ध नियामक वातावरण में सामंजस्य लाता है। फिर भी, बिना किसी गंभीर संसदीय बहुस या स्थायी समिति को भेजे विधेयक का पारित होना, राजनीतिक सहमति और सार्वजनिक जाँच के अभाव को रेखांकित करते हुए, प्रश्न खड़े करता है।

उल्लेखनीय रूप से, बंदरगाह अधिनियम, 2025 की राज्यों की कीमत पर शक्तियों का केंद्रीकरण करने और भारतीय संप्रभुता की रक्षा के लिए बनाए गए सुरक्षा उपायों को कमजोर करने के लिए आलोचना की गई है। आलोचक इसकी मुख्य विशेषता, समुद्री राज्य विकास परिषद (केंद्रीय बंदरगाह मंत्री की अध्यक्षता में) को एक केंद्रीकृत नीति-निर्माण प्राधिकरण के रूप में इंगित करते हैं, जिसके पास राज्यों को केंद्रीय दिशानिर्देशों का पालन करने का निर्देश देने की शक्ति है। उनका तर्क है कि सहकारी संघवाद के उदाहरण से कोसों दूर, नया बंदरगाह अधिनियम संघीय अधीनता का एक उदाहरण है, जिसे यह सुनिश्चित करने के लिए डिज़ाइन किया गया है कि राज्य अपनी प्राथमिकताओं की परवाह किए बिना सागरमाला और पीएम गति शक्ति जैसी केंद्रीय योजनाओं के साथ अपने बंदरगाह विकास को संरेखित करें। आलोचक समुद्री राज्य विकास परिषद की संरचना और मंशा की ओर इशारा करते हैं, जहां राज्य समुद्री बोर्ड केंद्रीय अनुमोदन के बिना अपने स्वयं के ढांचे को समायोजित नहीं कर सकते हैं, क्योंकि इससे तटीय राज्यों की वित्तीय स्वायत्तता और लचीलापन खत्म हो जाता है, जबकि उन पर बंदरगाह प्रबंधन की कड़ी जिम्मेदारियों का बोझ है।



**Suhrith Parthasarathy**

is an advocate practising in the Madras High Court

अपने कारणों को गोपनीय रखने का बचाव हमेशा दो दावों पर आधारित रहा है: यह कि खुलापन उन उम्मीदवारों की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचा सकता है जिनका चयन नहीं होता है, और यह कि यह व्यवस्था को राजनीतिक दबावों के सामने ला देगा। उचित जाँच करने पर, दोनों दावे ध्वस्त हो जाते हैं।

निस्संदेह, पारदर्शिता और प्रतिष्ठा की निष्पक्षता का मेल सावधानी से करने की आवश्यकता है। लेकिन अन्य संवैधानिक लोकतंत्र इसे भारत से बेहतर तरीके से प्रबंधित करते प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन का न्यायिक नियुक्ति आयोग अपने मानदंड खुले तौर पर निर्धारित करता है और रिपोर्ट जारी करता है जिसमें बताया जाता है कि उम्मीदवारों का मूल्यांकन कैसे किया गया। दक्षिण अफ्रीका में, उच्च न्यायिक पद के लिए उम्मीदवारों का साक्षात्कार न्यायिक सेवा आयोग द्वारा लिया जाता है, और उनकी उपयुक्तता पर सार्वजनिक रूप से बहस होती है। कोई भी प्रणाली दोषरहित नहीं है, लेकिन दोनों इस मान्यता से आगे बढ़ती हैं कि वैधता खुलेपन से प्रवाहित होती है। इसके विपरीत, भारत कॉलेजियम को एक निजी सम्मेलन मानता है। यहाँ तक कि असहमति का अस्तित्व भी हम तक लोक के माध्यम से ही पहुँचता है। यदि प्रतिष्ठा को होने वाला नुकसान एक वास्तविक चिंता है, तो इसका समाधान इसे कम करने के लिए प्रकटीकरण को सावधानीपूर्वक संरचित करने में निहित होना चाहिए। औचित्य को पूरी तरह से नकारना समाधान नहीं हो सकता। और यदि राजनीतिक दबाव का डर है, तो गोपनीयता शायद ही इसे रोक पाए। आखिरकार, कार्यपालिका कॉलेजियम की असुविधाजनक सिफारिशों में देरी और अड़चन डालती रहती है। वह पुनर्विचार के लिए नाम वापस कर सकता है या पुनः सिफारिश होने पर, फाइल को लंबित रख सकता है, तथा राष्ट्रपति की नियुक्ति का वारंट जारी करने से पहले ही रोक सकता है।

यहाँ दांव भारत के लोकतंत्र के मूल में है। आज चुने गए न्यायाधीश भारत के सबसे ज़रूरी संवैधानिक प्रश्नों के परिणामों को आकार देंगे, जिनमें नागरिक स्वतंत्रता से जुड़े मुद्दों से लेकर कार्यपालिका शक्ति की सीमाओं और केंद्र व राज्यों के बीच अधिकारों के विभाजन तक शामिल हैं। जब नागरिकों को बिना किसी कारण के केवल यह सूचित किया जाता है कि किसी न्यायाधीश को पदोन्नत किया गया है, या जब सर्वोच्च न्यायालय के किसी वर्तमान न्यायाधीश की असहमति को गोपनीयता में छिपा दिया जाता है, तो संस्थागत वैधता समाप्त हो जाती है। हम अपनी अदालतों से राज्य की अन्य शाखाओं से जवाबदेही पर ज़ोर देने की अपेक्षा बिल्कुल सही करते हैं। लेकिन ऐसा करके, क्या वे अपने लिए छूट का दावा कर सकते हैं?

न्यायमूर्ति नागरत्ना की असहमति ने न्यायमूर्ति पंचोली की पदोन्नति को नहीं रोका है। वास्तव में, यह संभव है कि कॉलेजियम के अन्य सदस्यों के पास उनकी नियुक्ति का समर्थन करने के अच्छे कारण रहे हों। वे क्या थे, यह हम कभी नहीं जान पाएंगे। लेकिन यहाँ बड़ा मुद्दा एक नाम से आगे तक फैला हुआ है। यह इस बात से संबंधित है कि क्या न्यायालय उसी सिद्धांत पर चलने के लिए तैयार है जिसे वह राज्य के हर दूसरे अंग पर थोपना चाहता है: कि सार्वजनिक शक्ति के प्रत्येक प्रयोग को उचित ठहराया जाना चाहिए।

#### एक न्यायपालिका

जो स्वयं को खुलेपन के उन्हीं मानकों के अधीन रखती है जिनकी वह दूसरों से अपेक्षा करती है, उसे लोगों का अधिक विश्वास और भरोसा प्राप्त होगा।

वे निजी तौर पर विचार-विमर्श करते हैं, न्यूनतम प्रकटीकरण के साथ निर्णयों को दर्ज करते हैं, और शायद ही कभी अपने तर्क स्पष्ट करते हैं।

2017 की शुरुआत में, कॉलेजियम ने अपने प्रस्तावों को प्रकाशित करना शुरू किया। लेकिन ये प्रस्ताव नाममात्र के थे और औपचारिक घोषणाओं से ज़्यादा कुछ नहीं थे। 2018 में थोड़े समय के लिए, न्यायालय ने कॉलेजियम के निर्णयों और अस्वीकृतियों के विस्तृत कारण अपलोड किए। हालाँकि, यह प्रयोग अल्पकालिक था, इस स्पष्टीकरण के साथ कि प्रकटीकरण से प्रतिष्ठा को ठेस पहुँच सकती है।

न्यायमूर्ति नागरत्ना की असहमति गोपनीयता के इस दुराग्रह की कीमत को उजागर करती है। यदि सर्वोच्च न्यायालय के किसी कार्यरत न्यायाधीश की आपत्ति भी जनता के लिए अत्यधिक संवेदनशील मानी जाती है, तो हमें यह पूछना होगा कि क्या कॉलेजियम ने केवल अस्पष्टता को ही नहीं अपनाया है, बल्कि जवाबदेही को पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया है।

#### कमज़ोर बचाव

अपने कारणों को गोपनीय रखने का बचाव हमेशा दो दावों पर आधारित रहा है: यह कि खुलापन उन उम्मीदवारों की प्रतिष्ठा को नुकसान पहुँचा सकता है जिनका चयन नहीं होता है, और यह कि यह व्यवस्था को राजनीतिक दबावों के सामने ला देगा। उचित जाँच करने पर, दोनों दावे ध्वस्त हो जाते हैं।

निस्संदेह, पारदर्शिता और प्रतिष्ठा की निष्पक्षता का मेल सावधानी से करने की आवश्यकता है। लेकिन अन्य संवैधानिक लोकतंत्र इसे भारत से बेहतर तरीके से प्रबंधित करते प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए, ब्रिटेन का न्यायिक नियुक्ति आयोग अपने मानदंड खुले तौर पर निर्धारित करता है और रिपोर्ट जारी करता है जिसमें बताया जाता है कि उम्मीदवारों का मूल्यांकन कैसे किया गया। दक्षिण अफ्रीका में, उच्च न्यायिक पद के लिए उम्मीदवारों का साक्षात्कार न्यायिक सेवा आयोग द्वारा लिया जाता है, और उनकी उपयुक्तता पर सार्वजनिक रूप से बहस होती है। कोई भी प्रणाली दोषरहित नहीं है, लेकिन दोनों इस मान्यता से आगे बढ़ती हैं कि वैधता खुलेपन से प्रवाहित होती है। इसके विपरीत, भारत कॉलेजियम को एक निजी सम्मेलन मानता है। यहाँ तक कि असहमति का अस्तित्व भी हम तक लोक के माध्यम से ही पहुँचता है। यदि प्रतिष्ठा को होने वाला नुकसान एक वास्तविक चिंता है, तो इसका समाधान इसे कम करने के लिए प्रकटीकरण को सावधानीपूर्वक संरचित करने में निहित होना चाहिए। औचित्य को पूरी तरह से नकारना समाधान नहीं हो सकता। और यदि राजनीतिक दबाव का डर है, तो गोपनीयता शायद ही इसे रोक पाए। आखिरकार, कार्यपालिका कॉलेजियम की असुविधाजनक सिफारिशों में देरी और अड़चन डालती रहती है। वह पुनर्विचार के लिए नाम वापस कर सकता है या पुनः सिफारिश होने पर, फाइल को लंबित रख सकता है, तथा राष्ट्रपति की नियुक्ति का वारंट जारी करने से पहले ही रोक सकता है।

यहाँ दांव भारत के लोकतंत्र के मूल में है। आज चुने गए न्यायाधीश भारत के सबसे ज़रूरी संवैधानिक प्रश्नों के परिणामों को आकार देंगे, जिनमें नागरिक स्वतंत्रता से जुड़े मुद्दों से लेकर कार्यपालिका शक्ति की सीमाओं और केंद्र व राज्यों के बीच अधिकारों के विभाजन तक शामिल हैं। जब नागरिकों को बिना किसी कारण के केवल यह सूचित किया जाता है कि किसी न्यायाधीश को पदोन्नत किया गया है, या जब सर्वोच्च न्यायालय के किसी वर्तमान न्यायाधीश की असहमति को गोपनीयता में छिपा दिया जाता है, तो संस्थागत वैधता समाप्त हो जाती है। हम अपनी अदालतों से राज्य की अन्य शाखाओं से जवाबदेही पर ज़ोर देने की अपेक्षा बिल्कुल सही करते हैं। लेकिन ऐसा करके, क्या वे अपने लिए छूट का दावा कर सकते हैं?

न्यायमूर्ति नागरत्ना की असहमति ने न्यायमूर्ति पंचोली की पदोन्नति को नहीं रोका है। वास्तव में, यह संभव है कि कॉलेजियम के अन्य सदस्यों के पास उनकी नियुक्ति का समर्थन करने के अच्छे कारण रहे हों। वे क्या थे, यह हम कभी नहीं जान पाएंगे। लेकिन यहाँ बड़ा मुद्दा एक नाम से आगे तक फैला हुआ है। यह इस बात से संबंधित है कि क्या न्यायालय उसी सिद्धांत पर चलने के लिए तैयार है जिसे वह राज्य के हर दूसरे अंग पर थोपना चाहता है: कि सार्वजनिक शक्ति के प्रत्येक प्रयोग को उचित ठहराया जाना चाहिए।

कई लोकतंत्रों में, गैर-निर्वाचित न्यायाधीशों द्वारा कानूनों को रह करने की चिंता को बहुसंख्यकवाद-विरोधी समस्या के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। अगर जनता द्वारा चुने न गए लोग ही इतना अधिकार रखते हैं, तो कोई व्यवस्था लोकतांत्रिक कैसे हो सकती है? पहली नज़र में, यह चिंता वास्तविक लगती है। लेकिन यह लोकतंत्र की असली परिभाषा को गलत तरीके से प्रस्तुत करती है। लोकतंत्र केवल संख्याबल के आधार पर बहुसंख्यकों का शासन नहीं है। सही अर्थ में, यह इससे कहीं अधिक है: नागरिकों के बीच एक साझेदारी जो अधिकारों की रक्षा करती है और यह सुनिश्चित करती है कि स्वतंत्रता और समानता सार्वजनिक जीवन का आधार बनें। गैर-निर्वाचित न्यायाधीश कानून की व्याख्या करके और बहुसंख्यकों की ज्यादातियों से अधिकारों की रक्षा करके यहाँ एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

यही कारण है कि संविधान एक गैर-निर्वाचित न्यायपालिका को असाधारण विशेषाधिकार प्रदान करता है। न्यायाधीशों का उद्देश्य स्वतंत्र मध्यस्थ के रूप में कार्य करना, सरकार पर नियंत्रण और संतुलन बनाए रखना और मौलिक स्वतंत्रताओं की रक्षा करना है। ऐसा करके, वे लोकतंत्र को कमजोर नहीं करते, बल्कि उसकी सर्वोच्च आकांक्षाओं को पूरा करते हैं।

#### कॉलेजियम को सुधार स्वीकार करना होगा

हालाँकि, न्यायपालिका को अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए, न्यायाधीशों की नियुक्ति की प्रक्रिया को स्वयं जवाबदेही के सबसे कड़े मानकों पर खरा उतराना होगा। कॉलेजियम अक्सर औचित्य पर पर्दा डालने की संस्कृति में सिमट गया है। जब तक यह सुधार को स्वीकार नहीं करता, तब तक यह उस वैधता को कम करने का जोखिम उठाता है जिस पर इसका अधिकार टिका है। अतीत में बदलाव के कई अवसरों को ठुकराया गया है; हर कदम आगे बढ़ने के बाद दो कदम पीछे हटते हैं, और हर पीछे हटने से पारदर्शिता और ईमानदारी के वे मूल्य नष्ट होते गए हैं जिन पर लोकतंत्र निर्भर करता है।

एक न्यायपालिका को खुद को खुलेपन के उन्हीं मानकों के अधीन रखती है जिनकी वह दूसरों से अपेक्षा करती है, उसकी स्वायत्तता कमज़ोर नहीं होगी। इसके विपरीत, यह अपनी स्वतंत्रता को लोगों के भरोसे और विश्वास में और अधिक मज़बूती से स्थापित करेगी।

# भारत के हालिया समुद्री सुधारों में सुधार की आवश्यकता है



**Abhijit Singh**

is a retired naval officer and the former Head of the Maritime Policy Initiative at the Observer Research Foundation, New Delhi

आलोचना केवल संघीय चिंताओं तक ही सीमित नहीं है। विशेषज्ञ चेतावनी देते हैं कि नया कानून अस्पष्ट, विवेकाधीन नियामक शक्तियों का प्रावधान करता है जो छोटे ऑपरेटरों पर असहनीय अनुपालन बोझ डाल सकते हैं। विवाद समाधान का तरीका भी उतना ही चिंताजनक है: विधेयक का खंड 17 दीवानी अदालतों को बंदरगाह संबंधी विवादों की सुनवाई करने से रोकता है, जिससे पक्षों को उन्हीं अधिकारियों द्वारा गठित आंतरिक विवाद समाधान समितियों में जाने के लिए मजबूर होना पड़ता है जिनके विरुद्ध वे मुकदमा लड़ रहे हैं। विशेषक चेतावनी देते हैं कि निष्पक्ष, स्वतंत्र न्यायिक समीक्षा का अभाव निजी निवेश को बाधित कर सकता है और नियामक प्रणाली में विश्वास को कम कर सकता है।

#### स्वामित्व का मुद्दा

व्यापारी नौवहन अधिनियम, 2025 भी खामियों से मुक्त नहीं है। यह पंजीकरण, स्वामित्व नियमों, सुरक्षा मानकों, पर्यावरणीय दायित्वों और दायित्व ढाँचों को आधुनिक बनाने का प्रयास करता है, जिसके कुछ उल्लेखनीय लाभ भी हैं: अपतटीय ड्रिलिंग इकाइयों और गैर-विस्थापन शिल्पों को शामिल करने के लिए पोत परिभाषाओं का विस्तार करना; समुद्री प्रशिक्षण संस्थानों की निगरानी को कड़ा करना; और भारत के दायित्व और बीमा नियमों को अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों के अनुरूप बनाना। फिर भी, इसके बारीक अक्षरों में स्वामित्व सुरक्षा उपायों में एक खामी छिपी हुई है। मर्चेंट शिपिंग एक्ट, 1958 के तहत, भारतीय ध्वज वाले जहाजों का पूर्ण स्वामित्व भारतीय होना आवश्यक था। नया अधिनियम प्रवासी भारतीय नागरिकों और विदेशी संस्थाओं सहित "आंशिक रूप से" भारतीय स्वामित्व की अनुमति देता है, जबकि वास्तविक सीमा बाद में सरकारी अधिसूचना द्वारा तय की जाएगी।

यह कानून बेयरबोट चार्टर-कम-डेमिस (बीबीसीडी) पंजीकरण को भी औपचारिक रूप से मान्यता देता है, जिसका उद्देश्य भारतीय संचालकों को अंततः स्वामित्व प्राप्त करने के लिए विदेशी जहाजों को पट्टे पर देने की अनुमति देना है। वैश्विक वित्तपोषण उपकरण के रूप में वैध होने के बावजूद, बीबीसीडी भारत की नियामक क्षमता का परीक्षण कर सकता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि हस्तान्तरण वास्तव में हो। स्पष्ट, लागू करने योग्य नियमों के बिना, विदेशी पट्टादाता अनिश्चित काल तक प्रभावी नियंत्रण बनाए रख सकते हैं। इसके अलावा, यह अधिनियम सभी जहाजों के पंजीकरण को अनिवार्य करता है, चाहे उनका आकार या प्रणोदन कुछ भी हो, छोटे संचालन को पर पड़ने वाले नौकरशाही बोझ की परवाह किए बिना। सबसे अधिक चिंताजनक बात यह है कि यह कार्यपालिका को स्वामित्व आवश्यकताओं को सुविधाजनक होने पर कम करने के लिए एक खाली चेक देता है, जिससे भारत के एक ऐसे सुविधा-आधारित क्षेत्राधिकार में जाने का जोखिम बढ़ जाता है जहाँ विदेशी मालिक भारतीय ध्वज वाले जहाजों को नियंत्रित करते हैं।

इनमें से कोई भी बात एक अद्यतन कानूनी ढाँचे की आवश्यकता को नकारने के लिए नहीं है। भारत को निश्चित रूप से अपने समुद्री कानून का आधुनिकीकरण करना चाहिए। लेकिन सुधार संघीय संतुलन और निष्पक्ष प्रतिस्पर्धा की कीमत पर नहीं होना चाहिए। स्वामित्व की सीमाएँ और लाइसेंसिंग नियम कानून में स्पष्ट रूप से विद्विष्ट होने चाहिए, न कि कार्यपालिका के विवेक पर। वर्तमान स्थिति में, बहुत से प्रावधान मनमाने हैं—न्यायिक स्वतंत्रता के अभाव वाले विवाद समाधान से लेकर नियोजन में राज्यों की किसी भी सार्थक भूमिका से राज्यों को वंचित करने तक। ये उपाय एक शुरुआत हो सकते हैं, लेकिन महत्वपूर्ण संशोधनों के बिना, ये कुछ लोगों के लिए व्यापार करने में आसानी प्रदान करने का जोखिम उठाते हैं, जबकि विदेशी समझौते को कमजोर करते हैं और भारत की दीर्घकालिक समुद्री सुरक्षा को कमजोर करते हैं।